



Neutral Citation No. 2026:AHC-LKO:3332-DB

ए.एफ.आर.

इलाहाबाद उच्च न्यायालय, लखनऊ खंडपीठ

सीमा शुल्क अपील सं. 19 सन् 2025

एवं 5 संबद्ध वाद

सीमा शुल्क आयुक्त (निवारक) लखनऊ

...अपीलकर्ता(गण)

बनाम

श्री शरद चंद अग्रहरि @ शरद चंद अग्रहरि

...प्रत्यर्थी(गण)

अपीलकर्ता(गण) के अधिवक्ता: धीरज श्रीवास्तव

प्रत्यर्थी(गण) के अधिवक्ता: जमील अहमद

न्यायालय सं.3

माननीय न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ

माननीय न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला

(न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ द्वारा खुले न्यायालय में सुनाया गया)

1. हमने अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री धीरज श्रीवास्तव और प्रत्यर्थीगण की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री जमील अहमद की दलीलें सुनीं।

2. सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 [एतस्मिनपश्चात् 'अधिनियम, 1962' के रूप में संदर्भित] की धारा 130 के तहत दायर ये सीमा शुल्क अपीलें, सीमा शुल्क, उत्पाद शुल्क और सेवा अपीलीय अधिकरण, इलाहाबाद, क्षेत्रीय पीठ - न्यायालय सं. 1 द्वारा दिनांक 24 अप्रैल, 2025 को पारित अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

एक सामान्य आदेश से संबंधित हैं। चूंकि इन सभी अपीलों में शामिल मुद्दे समान प्रकृति के हैं और सीमा शुल्क अपील सं. 19 सन् 2025 का निर्णय सभी अपीलों पर प्रभाव डालेगा, इसलिए हम सीमा शुल्क अपील सं. 19 सन् 2025 में विशिष्ट कानूनी प्रश्नों का निर्णय कर रहे हैं।

3. सीमा शुल्क अपील सं. 19 सन् 2025 में, राजस्व विभाग द्वारा निम्नलिखित महत्वपूर्ण विधिक प्रश्न उठाए गए हैं:-

"(1.) क्या सीईएसटीएटी द्वारा सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 138बी के प्रावधानों को 'निर्णय कार्यवाही' पर लागू करना उचित था, जिसके तहत यह माना गया कि सह-आरोपियों के बयानों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 138बी के तहत निर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन न करने के कारण कार्यवाही दूषित है?

(2.) क्या सीईएसटीएटी का यह निष्कर्ष कि धारा 108 के तहत दर्ज किया गया और बाद में बयानकर्ता द्वारा वापस लिया गया बयान (धमकी, प्रलोभन या वादे के संबंध में कोई साक्ष्य प्रस्तुत किए बिना) पर भरोसा नहीं किया जा सकता है, जो कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यूनियन ऑफ इंडिया बनाम पदम नारायण अग्रवाल (2008) 231 ई.एल.टी. 397 (एससी) और सुरजीत सिंह छाबड़ा बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1997) 89 (ई.एल.टी. 646 (एस.सी.) और के.टी.एम.एस. मोहम्मद बनाम यूओआई (एआईआर 1992 एससी 1831) में दिए गए कानून के विपरीत है? क्या यह न्यायिक अनुशासन के सिद्धांत का उल्लंघन करता है?

(3.) क्या सीईएसटीएटी द्वारा विदेशी चिह्नों की अनुपस्थिति, सोने की शुद्धता में अंतर और इस तथ्य के आधार पर कि जब्ती सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 6 के तहत निर्दिष्ट क्षेत्र से दूर हुई है, प्रत्यर्थी के अप्रमाणित और निराधार दावे/कहानी पर विश्वास करते हुए यह मानना न्यायसंगत था कि माल विदेशी मूल का नहीं है और तस्करी नहीं किया गया है?

(4.) क्या सीईएसटीएटी (क) धारा 111 (ख), (1) और (एम) के तहत सोने की बार की पूर्ण जब्ती और (ख) मामले के वर्तमान तथ्यों और परिस्थितियों के तहत

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



न्यायनिर्णायक प्राधिकारी द्वारा प्रत्यर्थी पर सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 112

(ख) और धारा 114ए के तहत लगाए गए 50,00,000/- रुपये के जुर्माने को रद्द करने में न्यायसंगत था?"

4. अधिकरण के आदेश का अवलोकन करने पर, हमारे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि क्या उक्त आदेश के पैरा 22 में अधिकरण का निष्कर्ष अधिकरण के समक्ष उपलब्ध साक्ष्यों पर आधारित है। अधिकरण ने माना है कि अधिनियम, 1962 की धारा 138-बी के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया, क्योंकि प्रत्यर्थीगण को उन गवाहों से जिरह करने का अवसर नहीं दिया गया जिनकी जांच निर्णय प्राधिकारी द्वारा की जा चुकी थी। राजस्व विभाग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने स्पष्ट रूप से तर्क दिया है और रिकॉर्ड पर दस्तावेज प्रस्तुत किए हैं जो यह दर्शाते हैं कि अपीलकर्ताओं ने किसी भी समय उन दो व्यक्तियों से जिरह करने की मांग नहीं की, जिनके पास से सोना बरामद हुआ था। अधिकरण इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि धारा 138-बी के तहत कारण बताओ नोटिस में उल्लिखित व्यक्तियों को जिरह का अवसर प्रदान करना अनिवार्य है और जिरह न करने से अधिनियम, 1962 की धारा 138-बी के तहत प्रक्रिया का उल्लंघन होगा।

5. अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता ने कारण बताओ नोटिस, निर्णय और वसूली संबंधी सीबीआईसी मास्टर सर्कुलर, सर्कुलर सं. 1053/02/2017-सीएक्स दिनांकित 10 मार्च, 2017 का हवाला देते हुए कहा कि विशेष रूप से पैरा 14.9 में यह उल्लेख है कि यदि नोटिस प्राप्तकर्ता उस व्यक्ति के जिरह का अनुरोध करता है, जिसके बयान पर कारण बताओ नोटिस में भरोसा किया गया है, तो निर्णय अधिकारी जिरह प्रदान करने के लिए बाध्य है। उन्होंने दिल्ली उच्च न्यायालय के एक फैसले *देवी दयाल बनाम भारत संघ 2002 (144) ईएलटी 502 (दिल्ली)* का भी हवाला दिया, जिसमें यह माना गया है कि जब नोटिस प्राप्तकर्ता ने जिरह के लिए व्यक्तियों को पेश करने का विशेष रूप से अनुरोध नहीं किया था, भले ही सामग्री उसके संज्ञान में लाई गई हो, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन से संबंधित शिकायत न्यायालय के समक्ष अपील योग्य नहीं होगी। उक्त फैसले के खिलाफ माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष दायर विशेष अनुमति याचिका को भी माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था। उन्होंने *कन्नुंगो एंड कंपनी बनाम कमिश्नर ऑफ कस्टम्स, कलकत्ता और अन्य (1983 (13) ईएलटी 1486 (एससी))* ; *लक्ष्मण एक्सपोर्ट्स लिमिटेड बनाम कलेक्टर ऑफ अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।*



सेंट्रल एक्साइज (2002 (143) ईएलटी 21 (एससी) ; सुशील अग्रवाल बनाम प्रिंसिपल कमिश्नर ऑफ कस्टम्स (2025) 30 सेंटैक्स 482 (दिल्ली) ; सुरजीत सिंह छाबड़ा बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (1997 (89) ईएलटी 646 (एससी) ; और नरेश जे. सुखवानी बनाम भारत संघ ने 1996 (83) ईएलटी 258 (एससी) जैसे कई फैसलों का भी सहारा लेते हुए कहा कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन केवल तभी होगा जब कारण बताओ नोटिस प्राप्तकर्ता जिरह की मांग करता है और निर्णय अधिकारी द्वारा इसकी व्यवस्था न की जाती।

6. प्रत्यर्थीगण/नोटिस प्राप्तकर्ताओं की ओर से विद्वान अधिवक्ता ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा जिंदल इग्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया (2016 (340) ई.एल.टी. 67 (पी एंड एच) , अंडमान टिम्बर इंडस्ट्रीज बनाम कमिश्नर ऑफ सी.एक्स., कोलकाता-II (2017 (50) एसटीआर 93 एससी), कमिश्नर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, मेरठ-I बनाम परमार्थ आयरन प्राइवेट लिमिटेड (2010 (260) ई.एल.टी. 514 (इला.) में दिए गए निर्णयों का सहारा अधिकरण द्वारा पारित आदेश के समर्थन में लिया, जिसमें अधिकरण ने माना है कि अधिनियम, 1962 की धारा 138-बी के तहत आवश्यक प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया है, जिससे अधिकरण की कार्यवाही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन न करने के कारण दूषित हो गई है।

7. निष्कर्ष और विश्लेषण में प्रवेश करने से पहले, हम अधिनियम, 1962 की धारा 138-बी का उल्लेख करना चाहेंगे, जो इस प्रकार है:-

"138बी. कुछ परिस्थितियों में कथनों की प्रासंगिकता-(1) इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी जांच या कार्यवाही के दौरान किसी व्यक्ति द्वारा सीमा शुल्क के किसी राजपत्रित अधिकारी के समक्ष दिया गया और हस्ताक्षरित कथन, इस अधिनियम के अंतर्गत किसी अपराध के लिए किसी भी अभियोग में उसमें निहित तथ्यों की सत्यता को सिद्ध करने के उद्देश्य से प्रासंगिक होगा,-

(क) जब बयान देने वाला व्यक्ति मर चुका हो, या न मिल सके, या साक्ष्य देने में असमर्थ हो, या विरोधी पक्ष द्वारा उसे दूर रखा गया हो, या जिसकी उपस्थिति प्राप्त करने में इतना विलंब या व्यय हो कि न्यायालय मामले की परिस्थितियों में उसे अनुचित समझे; या

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

(ख) जब बयान देने वाले व्यक्ति की न्यायालय के समक्ष मामले में गवाह के रूप में जांच की जाती है और न्यायालय की राय है कि मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, न्याय के हित में बयान को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।

(2) उप-धारा (1) के प्रावधान, जहां तक संभव हो, इस अधिनियम के अंतर्गत किसी भी कार्यवाही पर, न्यायालय के समक्ष कार्यवाही को छोड़कर, उसी प्रकार लागू होंगे जैसे वे न्यायालय के समक्ष कार्यवाही पर लागू होते हैं।”

निष्कर्ष एवं विश्लेषण

8. मामले की मेरिट पर विचार करने से पहले, माननीय सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुप्रयोग से संबंधित कानून की व्याख्या का अध्ययन करना आवश्यक है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने मेसर्स नेपा एजेंसी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (2015) एससीसी ऑनलाइन कलकत्ता 3597 निर्णीत दिनांक 13 मई, 2015 में इसी तरह के एक मामले पर विचार करते हुए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का विश्लेषण किया। न्यायालय ने यह माना कि सीमा शुल्क न्यायनिर्णयन में जिरह से इनकार करना, अपने आप में, प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन नहीं है। निर्णय के प्रासंगिक पैरा नीचे उद्धृत किए गए हैं:

“(12) प्राकृतिक न्याय के मुद्दे पर, श्री सरफ ने माननीय सर्वोच्च न्यायालय के मेसर्स कनुंगो एंड कंपनी बनाम कलेक्टर ऑफ कस्टम्स (1973) 2 एससीसी 438 में दिए गए निर्णय का सहारा लिया। विद्वान अधिवक्ता ने निर्णय के पैरा 12 का हवाला दिया, जो नीचे दिया गया है:-

12. हम सबसे पहले प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन के प्रश्न पर विचार करेंगे। रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री के आधार पर, हमारी राय में, ऐसा कोई उल्लंघन नहीं हुआ है। 21 अगस्त, 1961 को जारी कारण बताओ नोटिस में, सीमा शुल्क अधिकारियों द्वारा भरोसा की गई सभी सामग्री का उल्लेख किया गया था और तब अपीलकर्ता को उचित स्पष्टीकरण देना था। अपीलकर्ता की अब शिकायत यह है कि जिन सभी व्यक्तियों से अधिकारियों द्वारा पूछताछ की गई थी, उन्हें पेश किया जाना

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

चाहिए था ताकि उनसे जिरह की जा सके। हमारी राय में, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत न्याय की आवश्यकता यह नहीं है कि ऐसे मामलों में सूचना देने वाले व्यक्तियों से अपीलकर्ता की उपस्थिति में पूछताछ की जाए या उन्हें सीमा शुल्क अधिकारियों के समक्ष दिए गए बयानों पर अपीलकर्ता द्वारा जिरह करने की अनुमति दी जाए। इसलिए हम मानते हैं कि अपीलकर्ता के तीसरे तर्क में कोई बल नहीं है।

(13). श्री सराफ ने ए.एस. मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ सिविल अपील सं. 1517 सन् 2013 (एसएलपी (सी) सं. 2490 सन् 2008 से उत्पन्न) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय का भी हवाला दिया। उक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने टिप्पणी की कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों में व्यापक परिवर्तन आया है। वर्तमान में कानून का सिद्धांत यह है कि शिकायतकर्ता को कुछ वास्तविक हानि अवश्य हुई हो। न्यायालय ने अपनी पूर्व अवधारणा से हटकर यह निर्णय लिया है कि मामूली उल्लंघन होने पर भी आदेश अमान्य हो जाएगा। ऑडी अल्टरम पार्टम के सिद्धांत/अवधारणा में, उन मामलों के बीच अंतर किया गया है जिनमें सुनवाई बिल्कुल नहीं हुई और उन मामलों में जिनमें सिद्धांत का मात्र तकनीकी उल्लंघन हुआ। न्यायालय प्रत्येक मामले में उत्पन्न प्रभावित स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को लागू करता है। इसे मामले के प्रासंगिक तथ्यों और परिस्थितियों के संदर्भ के बिना शून्य में लागू नहीं किया जाता है। यह कोई बेलगाम घोड़ा नहीं है। इसे किसी तयशुदा दायरे में नहीं बांधा जा सकता। ”

9. उपरोक्त स्थिति को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के ए.एस. मोटर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इंडिया और अन्य (2013) 10 एससीसी 114 में दिए गए निर्णय से समर्थन मिलता है, जैसा कि मेसर्स नेपा एजेंसी कंपनी प्राइवेट लिमिटेड (उपरोक्त) में उद्धृत है, जिसमें माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के संबंध में कानून की नवीनतम स्थिति को स्पष्ट किया है। निर्णय के प्रासंगिक पैरा नीचे उद्धृत किए गए हैं:

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

"(8). यह अब तक अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि प्राकृतिक न्याय के नियम कठोर, अपरिवर्तनीय या अंतर्निहित नियम नहीं हैं जिन्हें संकीर्ण दायरे में रखा जा सके और न ही इन्हें इस प्रकार विकसित किया गया है कि ये सभी प्रकार के घरेलू अधिकरणों और जांचों पर सार्वभौमिक रूप से लागू हों। न्यायालय मूल रूप से प्रत्येक मामले में, जहां प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का आरोप लगाया जाता है, यह देखते हैं कि क्या प्रभावित पक्ष को अपना पक्ष प्रस्तुत करने का उचित अवसर दिया गया था और क्या प्रशासनिक अधिकरण ने निष्पक्ष, तटस्थ और उचित रूप से कार्य किया था। ऑडी अल्टरम पार्टम का सिद्धांत मनमानी और निष्पक्षता के अभाव पर प्रहार करने के उद्देश्य से बनाया गया है। इस विषय पर न्यायिक निर्णयों में यह स्वीकार किया गया है कि प्राकृतिक न्याय की मांगें विभिन्न परिस्थितियों में अलग-अलग हो सकती हैं, जो न केवल प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर, बल्कि अधिकरण की शक्तियों और संरचना तथा उसके द्वारा कार्य करने वाले नियमों और विनियमों पर भी निर्भर करती हैं। प्राकृतिक न्याय के नियमों के उल्लंघन पर आधारित शिकायत की जांच करने वाला न्यायालय यह देखने का हकदार है कि क्या पीड़ित पक्ष को वास्तव में ऐसे उल्लंघन के कारण कोई हानि हुई है। इस हद तक, पहले की इस धारणा से बदलाव आया है कि नियमों का तकनीकी उल्लंघन भी कार्रवाई को अमान्य करने के लिए पर्याप्त है। इस विषय पर न्यायिक निर्णय असंख्य हैं। हम केवल कुछ निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं जो हमारी राय में पर्याप्त होंगे।"

10. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पहले भी कई बार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के "कठोर" अनुप्रयोग के प्रति आगाह किया है। महाराष्ट्र राज्य माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक शिक्षा बोर्ड बनाम के.एस. गांधी (1991) 2 एससीसी 716 में न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

"(22). ...प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत की सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता निष्पक्षता घोर उल्लंघन कर मनमाने निर्णय लेने से रोकती है। लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों की प्रयोज्यता कोई नियम या कानून के अमूर्त प्रस्ताव के रूप में कोई कठोर सूत्र नहीं है। यह मामले के तथ्यों, जांच की प्रकृति और व्यक्ति के अधिकारों और संबंधित परिस्थितियों पर आदेश/निर्णय के प्रभाव पर निर्भर करता अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।

है। रिकॉर्ड से यह स्पष्ट है और इस पर कोई विवाद नहीं है कि सभी छात्रों ने मनगढ़ंत कहानी को स्वीकार किया है और यह उनके लाभ के लिए था तथा जिन विषयों में मनगढ़ंत कहानी बनाई गई थी वे उनके ही थे। इन स्वीकारोक्तियों को देखते हुए, जांच अधिकारी ने स्पष्ट रूप से सभी स्वीकारोक्तियों को दोहराना उचित नहीं समझा। यदि तथ्यों पर विवाद है, तो प्राधिकारी या जांच अधिकारी को रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर विचार करने के बाद, निष्कर्ष के समर्थन में कारण दर्ज करने चाहिए। चूंकि तथ्य स्वीकार किए गए हैं, इसलिए उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं थी और इसलिए केवल रिपोर्टों में निष्कर्ष बताए जा चुके हैं। इस मामले में कारणों को दर्ज न करना न तो गैरकानूनी है और न ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन है। निष्कर्ष सिद्ध हुए हैं या नहीं, यह एक अलग प्रश्न है और इस पर विस्तृत विचार-विमर्श की आवश्यकता होगी।”

11. अधिनियम, 1962 की धारा 138-बी का अवलोकन करने पर यह स्पष्ट है कि जिरह की अनुमति देने के लिए कोई विशिष्ट आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा, जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है, माननीय सर्वोच्च न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा स्थापित कानून यह है कि यदि अधिकारियों द्वारा किसी सामग्री पर भरोसा किया जाता है या किसी गवाह की जांच की जाती है, तो कारण बताओ नोटिस प्राप्तकर्ता द्वारा किए गए अनुरोध पर, उक्त दस्तावेजों को नोटिस प्राप्तकर्ता को उपलब्ध कराया जाना चाहिए और जिन गवाहों की जांच की गई है और जिनके बयानों पर अधिकारियों द्वारा भरोसा किया जा रहा है, वे नोटिस प्राप्तकर्ता द्वारा जिरह के अधीन होंगे। कानून यह अनिवार्य नहीं करता है कि प्रत्येक मामले में जिरह प्रदान की जाए। हमारा मानना है कि नोटिस प्राप्तकर्ता का यह दायित्व है कि वह गवाहों से जिरह की मांग करे और यदि ऐसा अनुरोध किया जाता है, तो अधिकारियों के लिए ऐसी जिरह प्रदान करना अनिवार्य है। यदि इस प्रकार की जिरह संभव न हो, तो निर्णयकर्ता को अपने आदेश में स्पष्ट रूप से उन कारणों को दर्ज करना होगा जिनके कारण गवाहों से जिरह नहीं की जा सकी। ऐसे कारण धारा 138-बी में निर्दिष्ट हो सकते हैं, जैसे कि गवाह की मृत्यु, गवाह का साक्ष्य देने में असमर्थ होना, गवाह का पता न चल पाना आदि।

12. प्रत्यर्थीगण/नोटिस प्राप्तकर्ताओं द्वारा उद्धृत निर्णय उनके लिए सहायक नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक मामले में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि करदाता को उन व्यक्तियों से जिरह अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



करने की अनुमति मांगने का अधिकार है जिनके कथनों पर भरोसा किया गया है, और यदि ऐसा अनुरोध करने के बाद भी उसका पालन नहीं किया जाता है, तो प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होगा। यहां तक कि ऐसे मामलों में भी, जैसा कि ऊपर पैरा 11 में बताया गया है, यदि जिरह के लिए गवाह उपलब्ध नहीं हैं, तो निर्णय प्राधिकारी प्रत्यर्थीगण/नोटिस प्राप्तकर्ताओं को जिरह न कराने का कारण बताएगा।

13. वर्तमान मामले में, अपीलकर्ताओं ने स्पष्ट रूप से कहा है कि किसी भी समय दो गवाहों से जिरह करने का अनुरोध नहीं किया गया था, और इसलिए, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस विशेष तथ्य का अधिकरण द्वारा स्पष्ट रूप से उत्तर नहीं दिया गया है, और जिरह करने का अनुरोध किया गया था या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर दिए बिना, अधिकरण का यह निष्कर्ष कि अधिनियम, 1962 की धारा 138-बी के तहत स्थापित प्रक्रिया के सिद्धांतों का उल्लंघन हुआ है, हमारी राय में कानून में स्थापित सिद्धांतों के विरुद्ध है। अधिकरण के लिए यह आवश्यक था कि वह पहले यह पता लगाए कि क्या नोटिस प्राप्तकर्ता द्वारा अनुरोध किया गया था। यदि उत्तर सकारात्मक होता, तो ही अधिकरण यह मान सकता था कि अधिनियम, 1962 की धारा 138-बी के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था। हालांकि, यदि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर नकारात्मक होता है, तो हमारा मानना है कि अधिकरण का यह निष्कर्ष कि अधिनियम, 1962 की धारा 138-बी के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था, गलत होगा।

14. यद्यपि अपीलकर्ताओं ने यहाँ कुछ दस्तावेज़ प्रस्तुत किए हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि जिरह का कोई अनुरोध नहीं किया गया था, फिर भी हमारा मानना है कि चूंकि अधिकरण अंतिम तथ्य-निर्धारण निकाय है, इसलिए इस मुद्दे का निर्णय अधिकरण द्वारा निर्णय प्राधिकारी के अभिलेखों और अन्य प्रासंगिक अभिलेखों को मंगवाकर किया जाना चाहिए।

15. उपरोक्त के आलोक में, हम दिनांक 24 अप्रैल, 2025 के आदेश को रद्द करते हैं और अधिकरण को वर्तमान निर्णय में उठाए गए मुद्दों के संबंध में उचित निष्कर्ष पर पहुंचने का निर्देश देते हैं।

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



16. उपरोक्त के आलोक में, सभी सीमा शुल्क अपीलें स्वीकार की जाती हैं और अधिकरण को निर्देश दिया जाता है कि वह मामले की नए सिरे से शीघ्र, अधिमानतः इस निर्णय की प्रमाणित प्रति प्राप्त होने की तिथि से तीन महीने की अवधि के भीतर, सुनवाई करे।

(न्यायमूर्ति मंजीव शुक्ला) (न्यायमूर्ति शेखर बी. सराफ)

16 जनवरी, 2026

लोकेश कुमार

Translated Version. Not for Legal Use

अस्वीकरण: अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।